

संस्कृत साहित्य में विश्वबन्धुत्व की परिकल्पना

डॉ० ओम प्रकाश सिंह
असि० प्रोफेसर संस्कृत विभाग,
सल्तनत बहादुर पी०जी० कालेज
बदलापुर, जौनपुर, उ०प्र०

संस्कृत साहित्य की यह एक अनोखी विशेषता है कि वह मानव मात्र के लिए कल्याण की भावना को अग्रसर करता है। संकीर्ण स्वार्थ को ही मानव जीवन का चरम पुरुषार्थ मानने वाले पाश्चात्य देशों के साहित्य में जो एकांगिता विद्यमान है, वह संस्कृत साहित्य को स्पर्श नहीं करती। कारण इसका स्पष्ट है। साहित्य संस्कृति का अग्रदूत है। साहित्य संस्कृति का वाहन है। समाज की भावना को दर्पणवत् प्रतिविम्बित करने वाला साहित्य कितना भी आदर्शवादी हो, वह यथार्थता का चित्रण किये बिना नहीं रह सकता। उसकी व्याप्ति राष्ट्र की परिधि के द्वारा नियंत्रित होती है। वह उस देश के प्राणियों में परिव्याप्त भावना को सर्वथा उल्लंघन करने की क्षमता नहीं रखता। पश्चिम के देश संकीर्ण राष्ट्रीयता की भावना से जकड़ हुए हैं। फलतः उनके साहित्य में उस संकीर्णता का ही परिचय हमें पदे-पदे मिलता है।

वहाँ के साहित्यिक अपने राष्ट्र की चहारदीवारी के भीतर अपने को सीमित रखते हैं। इसलिए उनकी वाणी राष्ट्रीयता के परिवृंहण में लगी रहती हैं। इससे विपरीत संस्कृति के कविजन उदारता का आश्रय लेकर संकीर्णता को अपने पास फटकने नहीं देते। फलतः संस्कृत का साहित्य विश्वबन्धुत्व की भावना से सर्वथा परिव्याप्त है।

वैदिक प्रार्थना में समष्टि भावना का पूर्ण साम्राज्य विराजमान है। वैदिक ऋषि व्यष्टि के कल्याण के लिए जगदीश्वर से प्रार्थना नहीं करता, प्रत्युत वह समग्र समष्टि के मंगल के लिए आशीर्वाद चाहता है। वह व्यक्ति तथा समाज से ऊपर उठकर समस्त विश्व के सुख-समृद्धि तथा मंगल के निमित्त ही प्रार्थना करता है। मन्त्रों का प्रामाण्य इस विषय में अक्षुण्य है।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।

यद् भद्रं तन्न आ सुव।⁽¹⁾

हे देव सविता समस्त पापकर्मों को हमसे दूर करो। हमारे लिए जो भद्र वस्तु कल्याणकारी पदार्थ हो, उसे हमें प्राप्त कराइये।

विश्वशांति और विश्वबन्धुत्व की उदात्त भावना से ओत-प्रोत वैदिक मन्त्रों में मानवमात्र में परस्पर सौहार्द, मैत्री तथा साहाय्य की भावना की उपलब्धि नितान्त स्वाभाविक है—

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।⁽²⁾

मैं मित्र की दृष्टि से सब प्राणियों को देखूँ। हम सब लोग मित्र की दृष्टि से परस्पर में एक दूसरे को देखें।

मानव मात्र का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह एक दूसरे की सर्वथा रक्षा तथा सहायता करे। केवल अपने ही स्वार्थ में उसे निविष्ट नहीं रहना चाहिए। इस भाव को द्योतित करता हुआ ऋग्वेद मन्त्र कहता है—

पुपाम् पुमांसं परिपातु विश्वतः⁽³⁾

वैदिक ऋषि भगवान् से प्रार्थना करता है कि वह मानवमात्र के लिए सुमति—सद्भावना धारण करे उन प्राणियों के प्रति नहीं नहीं जिन्हें वह देखता है, प्रत्युत उनके लिए भी, जो उसकी दृष्टि से ओझल हैं जिन्हें वह नहीं देखता—

याँश्च पश्यामि याँश्च न।

तेषु मा सुमति कृधि।⁽⁴⁾

कितनी उदात्त भावना है। यह सामान्यतः हम उन्हीं के कल्याण की कामना करते हैं, जिन्हें हम देखते हैं अपनी आँखों से, परन्तु वैदिक ऋषि यहीं तक अपनी प्रार्थना को सीमित नहीं रखता, प्रत्युतवह निखिल विश्व के अदृष्ट प्राणियों के भी प्रति वह भावना रखने का नम्र निवेदन करता है। कालिदास अपने कृतित्वों में विश्वबन्धुत्व की कल्पना करते हैं। भारतवर्ष एक अखण्ड राष्ट्र है। इस विशाल विस्तृत देश के नाम प्रान्तों में भाषा तथा स्थानीय वेश—भूषा की इतनी विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है कि बाह्यदृष्टि से देखने वालों को विश्वास नहीं होता कि देश में समरसता का साम्राज्य है, अखण्डता का बोलबाला है; परन्तु बाहरी आवरण को हटाकर निरखने वालों की दृष्टि में इसकी सांस्कृतिक एकता तथा अभिन्नता का परिचय पद—पद पर मिलता है। कालिदास भारतीय संस्कृति के हृदय थे। उनकी कविता में विश्व की सभ्यता झलकता है। उनके नाटकों में हमारी संस्कृति विश्व के रंगमंच पर अपना भव्य रूप दिखलाती है। उनकी वाणी राष्ट्रीय भाव तथा भावना से ओत—प्रोत है। इतिहास साक्षी है, इसी महाकवि ने आज से डेढ़ सौ वर्ष पहले जब भारत पाश्चात्य जगत् के सम्पर्क में आया, तब इस देश में सरस हृदय, कोमल वाणी तथा उदात्त भावना का प्रथम परिचय पाश्चात्य संसार को दिया। आज भी हम इस महाकवि की वाणी से स्फूर्ति तथा प्रेरणा पाकर अपने समाज को सुधार सकते हैं तथा अपना वैयक्तिक कल्याण सम्पन्न कर सकते हैं।

कालिदास अष्ट मूर्तियों का उल्लेख कुमारसम्भव महाकाव्य में मिया है जिसमें जगत् के रक्षण—कार्य का स्पष्ट संकेत है—

विदितं वो यथा स्वार्था न मे काश्चित्प्रवृत्तयः

ननु मूर्तिभिः अष्टाभिः इत्थंभूतः अस्मि सूचितः⁽⁵⁾

हे मुनिगण! मेरी कोई भी क्रियाएँ अपने लिए नहीं होती हैं यह आप लोगों को मालूम हैं। मैं आठ मूर्तियों से ऐसा सूचित किया गया है जिससे जगत् का कल्याण होता है।

सूर्य, चन्द्र, यजमान, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश। ये समस्त मूर्तियाँ प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। अतः इन प्रत्यक्ष मूर्तियों को धारण करने वाले इस जगत के चेतन नियामक सत्ता में किसी को सन्देह करने का अवकाश नहीं है। कालिदास वैदिक धर्म तथा संस्कृति के प्रतिनिध तहरे।

प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरन्ताभिरीश

इन शब्दों में वैदिक कवि ने निरीश्वरवादी बौद्धों को कड़ी चुनौती दी है। भगवान् की प्रत्यक्ष दृश्य-मूर्तियों में अविश्वास रखना किसी भी चक्षुष्मान् को शोभा नहीं देता। इतना ही नहीं इस श्लोक में भारत की एकता तथा अखण्डता की ओर भी संकेत किया गया है। शिव की इन मूर्तियों के तीर्थ इस देश के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक फैले हुए हैं। सूर्य प्रत्यक्ष देवता है। चन्द्रमूर्ति की प्रतिष्ठा दो तीर्थों में है— एक है भारत के पश्चिम में काठियावाड़ का सोमनाथ मंदिर और दूसरा है भारत के पूरब में बंगाल का चन्द्रनाथ क्षेत्र। सोमनाथ का प्रसिद्ध तीर्थ प्रभास क्षेत्र में है और चन्द्रनाथ का मन्दिर चटगाँव से लगभग चालीस मील उत्तर पूर्व में एक पर्वत पर स्थित है। नेपाल के पशुपतिनाथ यजमान मूर्ति के तीर्थ हैं। पञ्च तत्त्वों की सूचक मूर्तियों के क्षेत्र दक्षिण-भारत में विद्यमान है। शितिलिंग शिवकांची में एकाग्रेश्वरनाम के रूप में है। जललिंग जम्बुकेश्वर के शिव-मन्दिर में मिलता है। तेजोलिंग अरुणाचल पर हैं, वायुलिंग कालहस्तीश्वर के नाम से विख्यात हैं, जो दक्षिण के तिरुपति बालाजी के कुछ ही उत्तर में है। आकाशलिंग चिदम्बर के मंदिर में है। चिदम्बर का अर्थ ही है 'चिदाकाश'। इसी से मूल-मन्दिर में कोई मूर्ति नहीं है, आकाश स्वयं मूर्तिहीन जो ठहरा। इस प्रकार भगवान् चन्द्रमौलीश्वर की ये आठों मूर्तियाँ भारत के सबसे उत्तरीय भाग नेपाल से लेकर दक्षिण चिदम्बर तक तथा काठियावाड़ से लेकर बंगाल तक फैली हुई है। इनकी उपासना का अर्थ है समग्र भारतवर्ष की आध्यात्मिक एकता की उपासना महाकवि ने राष्ट्रीय एकता की ओर संकेत किया है।

ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में विशिष्ट सूक्त हैं जिनकी संज्ञा है सामंजस्य सूक्त। इनमें विशेष रूप से विश्व कल्याण की भावना परिव्याप्त हैं। इस विषय के एक दो मन्त्र यहाँ दिये गये हैं।

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्

देवा भागं यथा पूर्वं स जानाना उपासते।⁽⁶⁾

इस मन्त्र का तात्पर्य बड़ा गंभीर है। हे मनुष्यों जैसे सनातन से विद्यमान दिव्यशक्तियों से सम्पन्न सूर्य चन्द्रादि देव परस्पर अविरोध भाव से प्रेम से अपने कार्यों को करते हैं, ऐसे ही तुम भी समष्टि-भावना से प्रेरित होकर एक साथ कार्यों में प्रवृत्त हो ऐकमत्य से रहो और परस्पर सद्भाव से रहो।

समानी व – आकूतिः समाना हृदयानि वः

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।⁽⁷⁾

मानवों को लक्ष्य कर आंगरिस संवनन ऋषि का उपदेश इस मन्त्र में निहित है वह कहते हैं कि मानवों की आकूति-चित्तवृत्ति, हृदय तथा मन—सब समान हो तभी विश्व के प्राणी परस्पर में सौहार्द से निवास कर सकते हैं। अतः ऋषि केवल अपने वैयक्तिक मंगल के लिए भगवान् से प्रार्थना नहीं करता प्रत्युत वह मानव मात्र के हित का प्रार्थी है।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।⁽⁸⁾

यह अपना है और यह पराया है ऐसी गणना क्षुद्र चित वाले प्राणियों की है। उदार चरित वाले जनों की दृष्टि में ता यह समस्त वसुधा ही एक कुटुम्ब है। विश्व भावना की अभिव्यक्ति इससे बढ़कर सुन्दर शब्दों में नहीं की जा सकती। आजकल यातायात की सुविधा से यदि एक देश का मानव दूसरे देश के मानव के प्रति आवश्यकता के पाश में बद्ध होकर आकृष्ट होता है तो इसे हम समझ सकते हैं। परन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि ऐसी सुविधाओं से विरहित प्राचीनकाल में भारत के निवासी विश्वबन्धुत्व की भावना में विश्वास ही नहीं करते थे, प्रत्युत अपने दैनन्दिन जीवन में उसका व्यवहार भी करते थे।

भारत के निवासी आर्यजन का जीवन विश्वबन्धुत्व का व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत करता है। इस विश्वबन्धुत्व की भावना का एक गंभीर दार्शनिक पक्ष भी है। यह समग्र विश्व परमेश्वर्य—मण्डित सत्य ज्ञान अनन्त परब्रह्म का ही तो विवर्त है। जगत के जीव पर ब्रह्म के ही अंशभूत होने पर तद्रूप ही हैं। जगत के भीतर एक ही सर्वशक्तिमान परमेश्वर रमा हुआ है। अपनी अलौकिक घटनापटीयसी माया के कारक सर्वत्र व्याप्त हैं। विश्व का प्रत्येक अणु उसी की अमल शक्तिमत्ता का विजय घोष करता है। विश्व के समस्त जीव उसी परमपिता की सन्तान हैं। ऐसी दशा में उनमें पारस्परिक बन्धुत्व की भावना परिस्फुटित न होगी? यह कौन सचेता विश्वास कर सकता है। यह अद्वैत सिद्धान्त भारतीय संस्कृति की आधारशिला है। फलतः इस संस्कृति के परिवहन करने वाले संस्कृत साहित्य में इस भावना का सांडगोपांडग रूप उपलब्ध होता है— यह कथन पुनरुक्ति मात्र है। हमारे संस्कृत के काव्यों में तथा रूपकों में यह भावना बड़ी स्फुटता से अपनी अभिव्यक्ति पा रही है। इसलिए प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान की समाप्ति पर साधक पुरुष अपना आदर्श इस प्रसिद्ध श्लोक द्वारा प्रकट करता है—

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।

इस विश्व में सब प्राणी सुखी हों, सब लोग रोग से अक्रान्त न हो, सब प्राणी कल्याण की उपलब्धि करें कोई प्राणी दुःख का भाजन न हो।⁽⁹⁾

ऐसे उदात्त विश्वबन्धुत्व की भावना की व्यवहार तथा विचार उभय पक्षों में सुन्दर अभिव्यक्ति संस्कृत साहित्य की निजी विशिष्टता है।

सन्दर्भ

1. यजुर्वेद—30/3
2. वही 36/18
3. ऋग्वेद
4. अथर्ववेद 17/1/7
5. कुमारसम्भवम् 6/26

6. ऋग्वेद
7. ऋग्वेद
8. संस्कृत साहित्य का इतिहास—पृ०सं० 129
9. वही पृ०सं० 130